**ओ३म्**

**‘मनुष्यों एवं प्राणियों के जातिभेद ईश्वर व मनुष्यकृत दोनों हैं’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

ईश्वर ने इस संसार को अपने किसी निजी प्रयोजन से नहीं अपितु जीवों के कल्याणार्थ बनाया है। उसी ने सभी प्राणियों को उत्पन्न किया जिससे वह अपने प्रारब्ध अर्थात् पूर्व जन्मों के अवशिष्ट वा अनभुक्त कर्मों के सुख-दुःख रूपी फलों का भोग कर सकें और सद्कर्मों को करके उन्हें भविष्य में कोई दुःख न हो। मनुष्यों का एक उद्देश्य ईश्वर व उसकी कर्म-फल व्यवस्था को जानना भी है। इस व्यवस्था को जानकर और तदनुरूप पुरुषार्थयुक्त आचरण को करके उन्हें दुःखों से छूटने का प्रयत्न करना है। ईश्वर ने सृष्टि बनाने और जीवों को उनके कर्मानुसार भिन्न-भिन्न प्राणियों के शरीर देकर तो सभी मनुष्यों पर कृपा की ही है, इससे भी अधिक कृपा उसने सृष्टि के आरम्भ में जीवन को सुखी बनाने व दुःखों की निवृत्ति के उपाय सुझाने के साथ मोक्ष प्राप्ति की भी शिक्षा व ज्ञान (वेद) दिया है। सृष्टि के हमारे इस ग्रह पृथिवी पर प्राणियों की उत्पत्ति लगभग 1 अरब 96 करोड़ 8 लाख 53 सहस्र वर्ष पूर्व हुई थी। अब से लगभग 5-6 हजार वर्षों तक संसार में सभी लोग वैदिक धर्म की मान्यताओं के अनुसार ही अपना जीवन व्यतीत करते थे। किन्हीं कारणों से व्यवस्था में कुछ विकार हुआ जो समय के साथ बढ़ता गया जिसका परिणाम महाभारत का महाविनाशकारी युद्ध हुआ। इसी से सामाजिक व राजैनैतिक सभी व्यवस्थायें कुप्रभावित हुईं। इसके प्रभाव से विगत पांच हजार वर्षों में धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक अर्थात् राजधर्म विषयक अनेकों विकृतियां उत्पन्न हुईं जिसका उदाहरण वर्तमान एवं इससे उससे पूर्व का भारत व विश्व का समाज रहा है। इन अनेक बुराईयों में से एक सामाजिक बुराई व विषमता मनुष्यों में जन्मना जातिवाद की है। इस व्यवस्था ने भारत का सर्वाधिक अहित व समाज का पतन किया है। आज भी यह जन्मना जातिवाद विद्यमान है परन्तु आज की परिस्थितियों में इसका पूर्व प्रचलित जटिल रूप काफी शिथिल हुआ है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती (1825-1883) ने सन् 1863 में वेदों का पुनरुद्धार कर उनका प्रचार किया। वेद धर्म, समाज, राजधर्म व ज्ञान-विज्ञान सहित सभी सत्य विद्याओं के प्राचीनतम स्रोत व ग्रन्थ हैं। वर्तमान का जन्मना जातिवाद भी वेदों के मानने वाले महाभारत के उत्तरकालीन लोगों ने ही प्रचलित किया अथवा परिस्थितियोंवश ऐसा हो गया। अतः इसका निदान करने से पूर्व वेदों में समाज व्यवस्था का क्या स्वरूप है, यह देखना आवश्यक था। महर्षि दयानन्द महाभारत युद्ध के बाद वेदों के ऐसे प्रथम मर्मज्ञ विद्वान हुए हैं जिन्होंने वेदों के सत्य अर्थों को जाना था। उन्हें वेदों में पदे-पदे सत्य और मनुष्य जाति के कल्याण के ऐसे स्वर्णिम सूत्र प्राप्त हुए जिनका पालन न करने से ही संसार में अन्धकार छाया था। उन्होंने संसार से अज्ञान का अन्धकार दूर करने के लिए वेदों के ज्ञान वा शिक्षाओं के प्रचार को ही अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य बनाया जिससे इस धराधाम पर रहनेवाली समस्त मानव जाति सुख व सम्मान के साथ अपना जीवन व्यतीत कर सके। उन्होंने वेद सम्मत सामाजिक व्यवस्था का भी अध्ययन किया और उसे अपने उपदेशों, वार्तालाप और सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों के माध्यम से सबके कल्याणार्थ प्रस्तुत किया। उनके अनुसार वेद सभी मनुष्यों को उनके गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करने का अधिकार देते हैं। मनुष्यों के गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार चार विभाग किये जा सकते हैं और यह हैं ज्ञान प्रधान, बल प्रधान, वाणिज्य-व्यापार-कृषि-गोपालन के गुण प्रधान और गुणरहित व्यक्तियों का विभाग वा समूह। इनको क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र की संज्ञायें दी गई हैं। सामाजिक व्यवहार हेतु यह विभाग आवश्यक थे। आज भी इनका परिवर्तित रूप न केवल भारत अपितु विश्व भर में प्रचलित है जहां किसी व्यक्ति का महत्व उसके गुणों, कार्यों व स्वभाव से ही होता है। अध्यापक, राजा, सैनिक, पुलिस, डाक्टर, इंजीनियर, ड्राइवर आदि मनुष्य के गुणों व कार्यों का ज्ञान कराते हैं। इसे जाति कहें या न कहें, परन्तु यह चार वर्ण के समान मनुष्य के गुण-कर्म व स्वभाव के बोधक शब्द हैं। देश व समाज में मनुष्यों की रक्षा हेतु राज्याधिकारियों, सेना व पुलिस का अलग वर्ग है, शिक्षक, वैज्ञानिक, चिन्तक, अनेक विषयों के अलग अलग विद्वानों का अलग वर्ग है, भिन्न भिन्न व्यवसायों, कृषकों व पशु पालकों आदि का अलग वर्ग है और इनको सहयोग देने वाले अल्पज्ञानी, अल्प शक्ति वाले व व्यापार में अल्प ज्ञान व अनुभव वालों का अलग वर्ग है। मनुष्यों के यह चार वर्ण क्षत्रिय, ब्राह्मण आदि व इनके अन्तर्गत भिन्न-भिन्न जातियां ही महाभारतकाल व उसके बाद जन्मना जातिवाद में परिवर्तित हो गये। रामायण व महाभारत इतिहास के प्राचीन प्रमुख ग्रन्थ हैं। इसमें सहस्रों मनुष्यों के नामों का उल्लेख है परन्तु किसी के नाम के साथ कोई वर्ण व जातिसूचक शब्द का प्रयोग देखने को नहीं मिलता जैसा कि आजकल प्रयोग किया जाता है। इससे यह सिद्ध होता है जन्मना जाति व जातिसूचक शब्दों का प्रयोग व प्रचलन महाभारत काल के बाद विगत 5 हजार वर्षों में हुआ है।

**वेद सम्मत गुण-कर्म-स्वभाव पर आधारित वर्णाश्रम व्यवस्था के विषय में महर्षि दयानन्द जी ने अपने प्रमुख ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में विस्तार से लिखा है। वर्णाश्रम धर्म व्यवस्था तथा जन्मना जातिवाद दोनों परस्पर एक दूसरे से भिन्न व विरोधी हैं। सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ के एकादश समुल्लास में महर्षि दयानन्द ने जिज्ञासुओं की ओर से स्वयं प्रश्न प्रस्तुत किया है कि जाति भेद ईश्वरकृत है वा मनुष्यकृत? इसका वेद सम्मत उत्तर उन्होंने यह कहकर दिया है कि जातिभेद ईश्वरकृत और मनुष्यकृत भी हैं। अपने इस उत्तर पर वह स्वयं प्रश्न करते हैं कि कौन से जातिभेद ईश्वरकृत हैं और कौन से मनुष्यकृत हैं? इस प्रश्न का विस्तार से उत्तर देते हुए वह कहते हैं कि मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, जलजन्तु आदि जातियां परमेश्वरकृत हैं। जैसे पशुओं में गो, अश्व, हस्ति आदि जातियां, वृक्षों में पीपल, वट, आम्र, आदि, पक्षियों में हंस, काक, वकादि, जलजन्तुओं में मत्स्य, मकरादि जातिभेद हैं वैसे ही मनुष्यों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अन्त्यज जातिभेद हैं, यह भेद ईश्वरकृत हैं। परन्तु मनुष्यों में ब्राह्मणादि को सामान्य जाति में नहीं किन्तु सामान्य विशेषात्मक जाति में गिनते हैं। जैसा सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रकरण में उन्होंने लिखा है, वैसे ही गुण, कर्म, स्वभाव से वर्णव्यवस्था माननी अवश्य हैं। इसमें मनुष्यकृतत्व उनके गुण, कर्म, स्वभाव से पूर्वोक्तानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि वर्णों की परीक्षापूर्वक व्यवस्था करनी राजा (देश की सरकार) और विद्वानों (विद्यालयों व महाविद्यालयों के प्राचार्य आदि) का (सम्मिलित) काम है। इसका तात्पर्य है कि जिस-जिस मनुष्य में जैसी व जितनी योग्यता हो उसका उसी के अनुसार राजा और विद्वानों द्वारा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र वर्ण निर्धारित करना चाहिये और उसी के अनुसार समाज में व्यवहार होना चाहिये। ऐसा होने पर जन्मना जाति व्यवस्था स्वमेव निरर्थक हो जाती है और इससे उत्पन्न सभी प्रकार की सामाजिक विषमतायें दूर होती हैं। महर्षि दयानन्द के यह विचार जन्मना जाति के सर्वथा विपरीत एवं मनुष्यों में सद्गुणों के पोषक तथा विषमतारहित आधुनिक समाज के आधार हैं। महर्षि दयानन्द इसके आगे कहते है। कि भोजन भेद भी ईश्वरकृत और मनुष्यकृत है। जैसे सिंह मांसाहारी और अर्णा-भैंसा घासादि का आहार करते हैं यह ईश्वरकृत और मनुष्यों में देश, काल, खाद्य-वस्तु भेद से भोजनभेद मनुष्यकृत अर्थात् मनुष्यों द्वारा किए हुए हैं।**

महर्षि दयानन्द के इन विचारों से सुस्पष्ट है कि मनुष्यों में वर्तमान समय के अनुरूप जातिभेद वेदसम्मत न होकर उसके सर्वथा विरुद्ध हैं। अतः जातिसूचक शब्दों का जो प्रयोग किया जाता है वह अनुचित व अनावश्यक है। हां, मनुष्यों में गोत्र का प्रचलन ज्ञान-विज्ञान से पुष्ट है। यह मनुष्यों के विवाह आदि में लाभदायक होता है जिससे सन्तानों में बुद्धि व बल पराक्रम आदि नाना गुण उत्तम होते हैं। वर्तमान आधुनिक समय में जन्मना जाति व्यवस्था कुछ कमजोर अवश्य हुई है। आर्यसमाज की स्थापना व इसके द्वारा वेदों के प्रचार की इसमें महत्वपूर्ण भूमिका है जिसने जन्मना जातिवाद के विरुद्ध वैचारिक आन्दोलन किया। आज समाज में जाति-व्यवस्था की अन्धविश्वासयुक्त मान्यताओं के विपरीत अन्तर्जातीय व प्रेम विवाह आदि हो रहे हैं जिससे लगता है कि कुछ पीढि़यों के बाद यह समाप्त होकर इतिहास की वस्तु बन जायेगी। आर्यसमाज में सभी जन्मना जातियों के लोग हैं। इसका पुरोहित वर्ग भी वर्तमान की सभी जन्मना जातियों से युक्त है। आर्यसमाज ने ब्राह्मणों सहित क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र मानी जाने वाली जातियों के बच्चों को अपने गुरुकुलों में पूरी समानता प्रदान कर अध्ययन कराया जो बड़े-बड़े वैदिक विद्वान, पण्डित व संस्कृत भाषी बने हैं व अब भी बड़ी संख्या में देश भर में विद्यमान हैं। यह आर्यसमाज की सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्रान्ति थी। यह भी लिख दें कि जो व्यक्ति आर्यसमाज का सदस्य बनता है वह वेदानुसार व गुण-कर्म-स्वभावानुसार ब्राह्मण ही होता है। ऐसा इसलिए कि उसे सन्ध्या व अग्निहोत्र यज्ञ करना होता है। यज्ञ करना व कराना, अध्ययन करना व कराना तथा दान देना व लेना, यह तीन कार्य ब्राह्मणों के मुख्य होते हैं। यह सभी कार्य आर्यसमाज के सभी सदस्य व अनुयायियों के किए जाने से आर्यसमाज के सभी अनुयायी कर्मणा वैदिक ब्राह्मण होते हैं।

मनुष्य जाति पशु-पक्षियों के समान ईश्वरकृत जाति है। इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि भेद राजा व विद्वानों द्वारा गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार किये जाते हैं। आज के समाज व आधुनिक व्यवस्था में न केवल भारत अपितु समस्त संसार में यह भेद दृष्टिगोचर हो रहे हैं जो नितान्त आवश्यक भी है। महर्षि दयानन्द के अनुसार जातिसूचक शब्दों का प्रयोग पूर्णतया अवैदिक है जो सामाजिक विषमता को जन्म देता है। महर्षि दयानन्द वेदों के मर्मज्ञ थे। उनके समान व उनसे अधिक वेदों का ज्ञाता महाभारत काल के बाद उत्पन्न नहीं हुआ। अतः वेदों की व्यवस्था की दृष्टि से महर्षि दयानन्द की बातें, मान्यतायें एवं सिद्धान्त न केवल प्रमाणित ही हैं अपितु वह देश, समाज सहित समूचे विश्व के लिए हितकारी में भी है। इसी के साथ लेख को विराम देते हैं।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**